नेताजी की प्रतिमा के निहितार्थ

प्रेम सिंह

एक टीवी चैनल की बहस में भाजपा के प्रवक्ता और एंकर ने मिल कर यह झूठ चलाया कि नेताजी सुभाषचंद्र बोस की बेटी ने प्रधानमंत्री को लिखे पत्र में यह आरोप लगाया है कि कांग्रेस ने गांधी की अहिंसा को आगे रखने के उद्देश्य से नेताजी का अवमूल्यन किया; क्योंकि नेताजी ने आजाद हिंद फौज (आईएनए) के जरिए हिंसक तरीके से देश को आजाद कराने का रास्ता अपनाया। देश को आजादी हिंसक रास्ते से मिली इसकी पुष्टि करने के लिए उन्होंने 1946 के बंबई के नौसेना विद्रोह का भी खासा गुणगान किया। मैंने कहा कि नेताजी की बेटी का पत्र मैंने पढ़ा है, और उसमें ऐसा कोई आरोप नहीं है। लेकिन सत्ता के नशे में बोला जाने वाला झूठ मुंहजोर होता है।

नेताजी की बेटी अनीता बोस फाफ पहले भी देश के कतिपय प्रधानमंत्रियों से अपने पिता के अवशेष जापान से भारत वापस लाने की प्रार्थना कर चुकी हैं। किसी भी पत्र में उन्होंने गांधी की अहिंसा के आधार पर स्वतंत्रता आंदोलन में उनके पिता की भूमिका की अवमानना करने की बात नहीं कही है। अपने सभी वक्तव्यों में वे भारत की स्वतंत्रता को नेताजी द्वारा गठित आजाद हिंद फौज सहित सभी संस्थाओं और नेताओं के प्रयासों का परिणाम मानती रहीं हैं। वे यह भी मानती रही हैं, जो कि सही है, कि गांधीजी उनके पिता के व्यक्तित्व को सम्हाल नहीं पाते थे। वे अर्थशास्त्र की प्रोफेसर रही हैं। उनके वक्तव्यों से पता चलता है कि उनका एक सुलझा हुआ बौद्धिक और राजनीतिक व्यक्तित्व है। जर्मनी की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी की नेता रही फाफ पर उनके पिता के समाजवादी विचारों का प्रभाव भी रहा हो सकता है। हालांकि, इधर भारत में उनके बयानों की अधकचरी और बचकानी रिपोर्टिंग करने वाले पत्रकारों की कमी नहीं है।

भारत और जापान के नेताओं से उनका हमेशा एक ही आग्रह रहा है कि उनके पिता के अवशेष टोक्यो स्थित रेनकोजी मंदिर से भारत वापस लाए जाएं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को लिखे पत्र में भी उन्होंने देश की राजधानी के ऐतिहासिक इंडिया गेट पर नेताजी की मूर्ती लगाने पर उनका आभार व्यक्त करते हुए नेताजी के अवशेष भारत लाने की अपनी हमेशा की मांग दोहराई है। इस पत्र में उन्होंने किसी पर किसी तरह का आरोप नहीं लगाया है। बल्कि, पहले की तरह वर्तमान प्रधानमंत्री को लिखे पत्र में उन्होंने विपक्ष के नेताओं और नागरिकों से नेताजी के अवशेष भारत लाने में सहयोग करने की अपील की है। उन्होंने संरक्षित अस्थियों का डीएनए टेस्ट कराने की पेशकश भी की है, ताकि नेताजी की मृत्यु के साथ जुड़ी अटकलों को विराम दिया जा सके। हालांकि वे हवाई यात्रा में 18 अगस्त 1945 को हुई नेताजी की मृत्यु के स्पष्ट प्रमाणों के मद्देनजर डीएनए जांच की जरूरत नहीं समझती हैं। नेताजी और उनकी ऑस्ट्रियन पत्नी एमिली शेंकल की वियना में पैदा होने वाली इस बेटी की उम्र करीब 80 वर्ष हो चुकी है। पिता की मृत्यु के समय वे तीन वर्ष की थीं। अपने पिता के अवशेषों के प्रति उनका अनुराग स्वाभाविक है।

नेताजी द्वारा आजाद हिंद फौज बना कर ब्रिटिश हुकूमत से सशस्त्र सैन्य संघर्ष करना स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी सक्रियता का एक बहुत ही छोटा हिस्सा है। आरएसएस/भाजपा नेताजी की केवल आजाद हिंद फौज वाली भूमिका पर जोर देकर उनकी एक हिंदू-सैन्यवादी की छवि गढ़ना चाहते हैं। अर्थात आरएसएस/भाजपा को एक हिंसा-प्रेमी हिंदू नेताजी चाहिए। (जबकि खुद वीडी सवारकर कह चुके हैं कि "बोस महात्मा गांधी से बहुत अलग नहीं हैं, सिवाय इसके कि वे मुसलमानों के प्रति प्रेम जताने में गांधी से भी आगे निकल गए।") सवाल है कि आजाद हिंद फौज के जरिए देश की आजादी के लिए किया गया उनका प्रयास क्या कोरी हिंसा की कोटि में आता है? और क्या वह हिंसा गांधी की अहिंसा का जवाब थी? क्या नेताजी ने आजाद हिंद फौज का गठन करते वक्त या उसके बाद ऐसा कोई आह्वान किया था? क्या नेताजी की सेना हिंदू सेना थी? तथ्यों की रोशनी में ऐसा कुछ भी नहीं है। दरअसल, आरएसएस/भाजपा अब संसद के केंद्रीय कक्ष में सावरकर का चित्र लगाने भर से संतुष्ट नहीं हैं। वे गांधी की अहिंसा के मुकाबले सावरकर की हिंसा की श्रेष्ठता स्थापित करना चाहते हैं। इस मानसिकता को सावरकर के माफीनामों में देशभक्ति, युवाओं को शत्रुओं की हत्यायों के लिए उकसाने में वीरता और ब्रिटिश सेना में भारतीयों की भर्ती कराने में देश को सैन्यीकृत करने की दूरदृष्टि नजर आती है। लिहाजा, सावरकर की हिंसा और उसे स्थापित करने की आरएसएस/भाजपा की मंशा पर थोड़ा विचार करना मुनासिब होगा।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिंसा-अहिंसा का सवाल 1857 से ही उठ खड़ा हुआ था। उपनिवेशवाद के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह करने वाले सिपाहियों, विद्रोह में उनका साथ देने वाले किसानों-कारीगरों और कतिपय रजवाड़ों का साथ भारत के नवोदित मध्य-वर्ग ने नहीं दिया था। 1857 के संग्राम के दौरान और उसके दमन के बाद हुई भीषण हिंसा की दहशत अगले चार दशक तक समाज में छाई रही। इस दहशत के सन्नाटे को चाफेकर बंधुओं में सबसे बड़े दामोदर हरि चाफेकर ने 22 जून 1897 को पुणे के जिलाधिकारी वाल्टर चार्ल्स रैंड और उनके सहायक आयस्टर की गोली मारकर हत्या करके तोड़ा। इस घटना के साथ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन का सूत्रपात हो गया।

जैसे-जैसे क्रांतिकारी आंदोलन आगे बढ़ा हिंसा-अहिंसा की बहस नया मोड़ लेती गई। गांधी ने अहिंसा का दर्शन प्रस्तावित करके इस बहस को एक नया आयाम दिया। गांधी के अहिंसा के दर्शन के बरक्स क्रांतिकारियों ने अपना 'बम का दर्शन' सामने रखा। क्रांतिकारियों ने अपने दर्शन में साफ कर दिया कि झूठ, कपट और षड्यन्त्र के 'दर्शन' पर टिकी हिंसा से क्रांतिकारी आंदोलन की हिंसा का संबंध नहीं है। गांधी ने क्रांतिकारियों की बहादुरी की तारीफ की, और उन्हें अहिंसा के सही रास्ते पर आने की सलाह दी। उन्होंने यह भी कहा कि अहिंसा कायरों का हथियार नहीं हो सकती। गांधी ने सावरकर को भी समझाने की कोशिश की कि झूठ, कपट और षड्यन्त्र के रास्ते मानव जीवन के बड़े लक्ष्य सिद्ध नहीं किए जा सकते। गांधी जब लंदन के इंडिया हाउस में सावरकर और उनसे प्रभावित कुछ युवकों से मिले थे, तो उन्हें इसका कुछ अहसास हो चला था कि भारत को स्वतंत्रता के साथ मानवता के लिए एक बड़े लक्ष्य की सिद्धि भी करनी है। चर्चा के बाद गांधी ने लंदन से लौटते हुए जहाज में 'हिंद स्वराज' की रचना की।

सावरकर जब 1924 में कैद से बाहर आए तो क्रांतिकारी आंदोलन एक नए विचारधारात्मक चरण में प्रवेश कर चुका था। भागात सिंह और उनके साथियों द्वारा 1924 में हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन और 1926 में भारत नौजवान सभा की स्थापना हो चुकी थी। 1929 में हुए भारत नौजवान सभा के लाहौर अधिवेशन की अध्यक्षता नेताजी ने की थी। सावरकर की हिंसा का रिश्ता क्रांतिकारियों की हिंसा के साथ नहीं बैठ सकता था। स्वतंत्रता आंदोलन का विरोध और उपनिवेशवादी सत्ता का समर्थन उनके रास्ते की स्वाभाविक परिणति थी। और वही हुआ। वे अंत तक अंग्रेजों के वफादार बने रहे। आजादी के बाद भी उनकी 'कीर्ति' गांधी की हत्या के मुकद्दमे से जुड़ी है। उन्होंने अपनी परिचित रणनीति के तहत अदालत में गोडसे को पहचानने तक से इनकार कर दिया था। लेकिन यह माना जाता है कि अदालत में दिया गया नाथूराम गोडसे का बयान कलम के धनी सावरकर ने लिखा था। वे 40 साल पहले क्रांतिकारी शहीद मदनलाल ढींगरा के लिए भी यह काम कर चुके थे। हालांकि लंदन की अदलात ने ढींगरा को वह बयान पढ़ने की अनुमति नहीं दी।

सावरकर 1966 तक जीवित रहे, लेकिन देश और समाज की सेवा में कोई उल्लेखनीय सकारात्मक काम उनके खाते में दर्ज नहीं है। जो लोग मानते हैं कि सावरकर के माफीनामों के पीछे देशभक्ति छिपी थी, उनके बारे में यही कहा जा सकता है कि वे न क्रांतिकारी आंदोलन के बारे में जानते हैं, न भारतीय जनता के खुले आंदोलन के बारे में। सावरकर द्वारा दूसरे विश्व-युद्ध में लड़ने के लिए सेना में भारतीयों की भर्ती कराने के उद्यम में भारत के सैन्यीकरण की 'दूरदृष्टि' देखने वालों को शायद मालूम नहीं है कि ब्रिटिश सेना में भारतीय अफसर के रूप में नहीं, देश-विदेश के लड़ाई के मोर्चों पर गाजर-मूली की तरह कटने लिए सिपाही के रूप में भर्ती किए जाते थे।

नेताजी को हिंसा के दायरे में खींचने की आरएसएस/भाजपा की कवायद के वास्तविक निहितार्थ को समझने की जरूरत है। स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में नेताजी एक बड़ा नाम हैं। जनमानस में उनकी गहरी प्रतिष्ठा है। कुछ लोगों की नजर में वे गांधी के बाद भारत की सबसे लोकप्रिय शख्सियत हैं। आरएसएस/भाजपा को लगता है भगत सिंह व अन्य 'हिंदू' क्रांतिकारियों को नेताजी की छत्रछाया में सावरकरीय हिंसा के पाले में खींचना आसान होगा। लेकिन मामला इतना भर नहीं है। आरएसएस/भाजपा नेताजी और क्रांतिकारियों का चयनात्मक अपनाव (सेलेक्टिव अप्रोप्रीऐशन) कर 'देश को कायर बनाने के लिए जिम्मेदार' गांधी और उनकी अहिंसा के दर्शन से मुक्ति दिलाना चाहते हैं। सावरकर ने अपनी पुस्तक '1857 का स्वातंत्र्य समर' में अंग्रेजों द्वारा गदर (म्यूटनी) करार दिए गए सिपाही-विद्रोह को भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम बताया है। अपनी पुस्तक में उन्होंने हिंसा का काफी उत्सव भी मनाया है। लेकिन आरएसएस/भाजपा गांधी की अहिंसा के बरक्स 1857 को नहीं लाते। क्योंकि उपनिवेशवाद से आजादी के उस पहले बड़े संग्राम का हिंदू-मुसलमान एका उनकी बहुसंख्यावाद पर टिकी सांप्रदायिक राजनीति के आड़े आता है।

सच्चाई यही है कि गुलाम और कायर मानसिकता वाले अनेक भारतीयों ने दुनिया के शायद सबसे शानदार स्वतंत्रता संघर्ष में हिस्सा नहीं लिया। राजे-रजवाड़ों, बड़े-छोटे सरकारी अफसरों, धन्ना-सेठों, तरह-तरह के

अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों सहित मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा, आरएसएस के नेता उन भारतीयों में शामिल थे। इस सच्चाई के बावजूद प्रधानमंत्री और उनके बाद आरएसएस/भाजपा के विचारक मीडिया में बोल और लिख कर लगातार यह दोहरा रहे हैं कि नेताजी की प्रतिमा स्थापित करके उन्होंने औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति दिलाई है। वे शायद यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि राजनीतिक सत्ता के सहारे फैलाया भ्रम एक न एक दिन टूट जाता है।

बहरहाल, आरएसएस/भाजपा की इस सारी कवायद के क्या नतीजे निकलेंगे यह तो भविष्य बताएगा। लेकिन वर्तमान में यह स्पष्ट है कि यह सब करके आरएसएस/भाजपा स्वतंत्रता आंदोलन की चेतना को विकृत करने और राष्ट्रीय नेताओं को ओछी राजनीति में घसीट कर उनका अवमूल्यन करने के साथ स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने वाली विशाल भारतीय जनता का भी अपमान कर रहे हैं। यह सब करते हुए जब वे कभी कृष्ण, कभी अर्जुन, कभी चाणक्य जैसी पौराणिक-ऐतिहासिक विभूतियों का हवाला देते हैं, तो अपमान उनका भी होता है। आरएसएस/भाजपा और उनके समर्थकों के लिए बेहतर यह होगा कि गुलामी और कायरता की मानसिकता को तरह-तरह की कवायदों से छिपाने के बजाय बदलने के प्रयास किए जाएं।

पुनश्च: आरएसएस/भाजपा द्वारा नेताजी को अपनाने पर प्रगतिशील धर्मनिरपेक्ष खेमे ने उनके समाजवादी एवं धर्मनिरपेक्ष विचारों का हवाला देकर अपना पुराना तर्क दोहराया है कि आरएसएस/भाजपा नेताजी को पचा नहीं सकते। यही तर्क विवेकानंद, भगत सिंह, अंबेडकर आदि अनुप्रतीकों के अपनाव के समय भी दिया जाता रहा है। तीन दशक बीतने के बाद भी भारत के बुद्धिजीवी यह मानने को तैयार नहीं हैं कि कारपोरेट राजनीति के दौर में राष्ट्रीय नेताओं/विचारकों को उनके विचारों/कामों के लिए नहीं, नवउदारवाद के पक्ष में उनका रंगारंग इस्तेमाल करने के लिए अपनाया जाता है; उपनिवेशवादी वर्चस्व से संघर्ष करने वाली हस्तियों को नवउपनिवेशवादी गुलामी के हमाम में शामिल किया जाता है। उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम - भारत के सभी भागों में सक्रिय पार्टियां कमोबेश यह कर रही हैं। इस संदर्भ में एक उदाहरण पर्याप्त होना चाहिए। यूथ फॉर इक्वालिटी के तत्वावधान में आरक्षण के खिलाफ अभियान चलाने वाले, कॉर्पोरेट-कम्यूनल नेक्सस को प्रगतिशील धर्मनिरपेक्ष खेमे में स्वीकार्य बनाने वाले फोर्ड फाउंडेशन के अरविंद केजरीवाल जैसे बच्चों के 'आदर्श' अंबेडकर और भगत सिंह हैं। कारपोरेट राजानीति के इस खेल में गांधी की स्थिति पंचायती बच्चे जैसी बना दी गई है। जिस पार्टी/नेता को जब काम पड़ता है पुचकार देता है, नहीं तो दुत्कार देता है।

(समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फ़ेलो हैं।)